

भारतीय संगीत में वाद्यों का महत्व

Dr. Rajeev Sharma*

Assistant Teacher, Department of Music, Himachal Pradesh University, Shimla

सार - संगीत में वाद्यों का विशेष महत्त्व है। इसके बिना गायन, वादन, नर्तन का सौन्दर्य अधखिली कली के सदृश्य होता है। गायन, वादन, नृत्य, वाद्यों की संगति पाकर पूर्ण विकसित सुमन की भांति खिल उठते हैं। केवल गायन, वादन तथा नृत्य में ही नहीं बल्कि नाटकों में भी वाद्यों का विशेष महत्त्व होता है। गायन की भांति वादन भी नाट्य क्षेत्र में आवश्यक है। भरत मुनि ने कहा है।

“वाद्येशु यत्नः प्रथमं कार्यः वदन्ति शैया चं नाट्यम वदन्ति वाद्यम्।

वाद्येऽविगीतऽपी च सुप्रयुक्तेय, नाट्यस्य शोभाम् न विनाशमेति”

अर्थात् सर्वप्रथम नाटकों में वाद्य का वादन करना चाहिए क्योंकि वाद्य वादन नाटक की एक शैया हैं गीत और वाद्य का उचित प्रयोग होने से नाटक की शोभा द्रविगुणित हो उठती है।

-----X-----

वाद्यों की उत्पत्ति

‘वाद्य’ शब्द का शाब्दिक अर्थ है-बजाने योग्य तन्त्र विशेष। यह शब्द ‘वद’ धातु (जिसका अर्थ है बोलना) में ‘यत्’ प्रत्यय लगाने से बना है। यदि हम ध्यान पूर्वक सुने तो वाद्यों में हमें स्वरों तथा उसमें पिरोए हुए शब्दों का उच्चारण भी सुनाई देता है और यही वाद्य यन्त्रों की सफलता की कसौटी भी है। अन्तर केवल इतना है कि गायन में पिरोए हुए स्पष्ट सुनाई देते हैं। परन्तु वाद्य यन्त्रों की ध्वनि में शब्दों का अन्तर विभास रहता है। डॉ. सुशमा कुल श्रेष्ठ के अनुसार “संगीतात्मक ध्वनि तथा गति को प्रकट करने वाले उपकरण ‘वाद्य’ कहलाते हैं। विभिन्न वाद्यों द्वारा उद्भूत स्वर तथा आनन्द, वाद्य संगीत अथवा वादन कहलाता है। वाद्य संगीत में स्वर तथा लय के माध्यम से बिना किसी अन्य कला की सहायता के, श्रोताओं को चिरकाल तक आनन्दानुभूति में समाए रखने की अद्भुत शक्ति है।”¹ अतएव आन्तरिक भावों व अनुभूतियों को संगीतात्मक ध्वनि लय बोलों के माध्यम से प्रकट करने वाले उपकरण ‘वाद्य’ कहलाते हैं और संगीत में लगने वाले समय की गति को मापने वाले यन्त्र विशेष ताल वाद्य कहलाते हैं। संगीत साहित्य के विवेचन से ताल वाद्यों की उत्पत्ति के विभिन्न आधार प्राप्त होते हैं-

- 1) भारतीय संस्कृति का प्रत्येक पक्ष धर्म से अनुप्राणित है। यही कारण है कि भारतीय संगीत भी धर्म के प्रभाव से अछूता न रह सका धार्मिक तथ्यों के आधार पर यह मानना ही होगा कि संगीत में अपरिहार्य स्थान रखने वाले इन वाद्यों की उत्पत्ति का सम्बन्ध किसी न किसी देवता से रहा है। बांसुरी में कृष्ण कन्हैया, डमरू में भगवान शंकर तथा वीणा में देवी सरस्वती की कल्पना साकार हो उठती है। इस प्रकार मानव ने वीणा से तन्त्री वाद्यों, डमरू से ताल वाद्यों बांसुरी से सुशिर वाद्यों के निर्माण की प्रेरणा प्राप्त की। इस सन्दर्भ में ऐसी किंवदन्ति प्रचलित है कि त्रिपुरासुर राक्षस का वध करने के उपरान्त प्रसन्नचित शिव नृत्य करने लगे उनके नृत्य को लय बद्धता प्रदान करने के लिए ब्रह्म ने त्रिसुरापुर के रक्त और मिट्टी के मिश्रण से एक पिण्ड बनाया और उसकी खाल से ही उसे मढ़ दिया फिर शिवजी के पुत्र गणेश को ताल देने का आदेश दिया। तभी से ताल और अवनद्ध ताल-वाद्यों की श्रष्टि हुई। चर्म से मढ़े होने के कारण डमरू आदि वाद्य अवनद्ध वाद्यों की कोटि में आते हैं। इन्हें ‘चर्मज’ भी कहते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि शिव के डमरू से ही समस्त ताल वाद्यों की उत्पत्ति

¹ कालिदास, साहित्य एवं वादन कला, डॉ. सुशमा कुल श्रेष्ठ, प्रष्ठ संख्या-29

हुई। इस प्रकार धार्मिक आधार पर ब्रह्म तथा शिव ताल वाद्यों के जनक हैं।

- 2) मानव सदा से ही प्रकृति के निकट रहा है। अपने चहुं ओर के प्राकृतिक वातावरण में समाविष्ट अनेक प्रकार की ध्वनियों को सुनता है। जैसे बादलों की गरज, बिजली की कड़क, नदियों व झरनों की कल-कल, बांस के जंगलों में वायु की सरसराहट, पत्तों की खड़खड़ाहट आदि वही संगीतमय प्राकृतिक ध्वनियां ही मानव मन में वाद्य संगीत की प्रेरणा स्रोत रही उदाहरणार्थ- दुंदुभि, भेरी आदि वाद्यों की ध्वनि मेघ गर्जन के समान गम्भीर होती थी। 'नाट्य शास्त्र के अनुसार' "वाद्यों के प्रणेता स्वाति ऋषि कहे जाते हैं जिन्होंने 'पुष्कर' नामक वाद्य का सृजन प्राकृतिक ध्वनि से प्रेरणा प्राप्त कर किया। स्वाति एक बार छुट्टी के दिन (अनध्ययन दिन) एक सरोवर पर पानी लाने के लिए गये थे। आकाश बादलों से घिरा हुआ था वेग पूर्वक वर्षा होने लगी। तब वायु वेग से सरोवर में बड़ी-2 बूंदों के पड़ते समय पद्म की बड़ी छोटी और मन्झोली पंखुड़ियों पर वर्षा बिन्दुओं के आघात से विभिन्न ध्वनियां उत्पन्न हुई। उनकी अव्यक्त मधुरता को सुनकर आश्चर्य चकित स्वाति ने उन ध्वनियों को अपने मन में धारण कर लिया और आश्रम पहुंचने पर विश्वकर्मा से कहा कि इस तरह से शब्द (ध्वनि) उत्पन्न करने के लिए वाद्य बनाना चाहिए। फलतः पहले पहल मृतसे तीन मुख से युक्त पुष्कर की श्रष्टि हुई। बाद में उसका पिण्ड लकड़ी या लोहे से बनाया गया। तब हमारे मृदंग, पटह, झल्लरी, दर्दुर आदि चमड़े से मढ़े हुए वाद्यों की श्रष्टि हुई।"²

भरत मुनि के उपरोक्त मत की पुष्टि श्री धर परान्जपेय ने इन शब्दों में की "चर्म वाद्य बनाने की कल्पना भी प्रकृति के सम्पर्क से ही स्फुरित हुई। मृत शिकार का चर्म विभिन्न उपकरण बनाने के लिए काम में लाया गया। ताल देने के लिए उपयोगी चर्म वाद्य बनाने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाने लगा। चर्म को किसी पोली चीज़ पर तान कर उस पर आघात करने से गम्भीर ध्वनि निकलती है। इसका अनुभव किया। इससे दुन्दुभि तथा भूमि दुन्दुभि जैसे वाद्यों की कल्पना उसके मन में स्फुरित हुई। प्रथम में लकड़ी का खोल लेकर उस पर चमड़ा तान दिया जाता था और दूसरे में भूमि में गढ़ा बनाकर उस पर चमड़ा मढ़ा जाता था। इस चमड़े को चारों ओर से

बद्धियों से कस कर तनाव पैदा किया जाता था। डमरू, ढक्का तथा दुन्दुभि पहले प्रकार के वाद्य हैं और भूमि दुन्दुभि दूसरे प्रकार का। इनको बजाने के लिए या तो हाथ का या लकड़ी के टुकड़ों का प्रयोग किया जाता रहा।"³ इससे स्पष्ट होता है कि अवनद्ध वाद्यों के निर्माण में विभिन्न प्राकृतिक ध्वनियां सर्वाधिक प्रेरक सिद्ध हुई।

वाद्यों का वर्गीकरण

कसी भी विशय के अन्तरंग में जानें तथा सूक्ष्म ज्ञान हेतु उसका वर्गीकरण आवश्यक है। मानव सभ्यता के साथ उदित संगीत कला के क्षेत्र में आदिकाल से लेकर आज तक चार प्रकार के वाद्यों का ही प्रयोग देखने को मिलता है। इसका कारण यह है कि मानव ने प्राकृतिक वातावरण में केवल चार प्रकार की ध्वनियों का ही श्रवण किया और उसी के आधार पर चार प्रकार के वाद्यों का निर्माण किया।, जैसे वनों में विचरण करते हुए वृक्षों की खेहों में वायु के प्रविष्ट होने और निकलने से होने वाली ध्वनि को मस्तिष्क में धारण कर, वायु की फूंक द्वारा बजाने वाली बंसी आदि सुशिर वाद्य, कमल के छोटे-बड़े पत्तों पर गिरने वाली वर्षा की बूंदों की ध्वनि के आधार पर किसी खोखली वस्तु पर चर्माच्छादित कर मृदंग, ढोल आदि अवनद्ध वाद्य और इसी प्रकार अन्य वाद्यों की उत्पत्ति हुई।

प्राकृतिक संगीत में ध्वनियों के आधार पर मानव द्वारा निर्मित चार प्रकार के वाद्यों के अतिरिक्त नैसर्गिक कण्ठ ध्वनि को भी वाद्यों में ही सम्मिलित किया है। इस प्रकार पांच प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले वाद्यों को 'पंचमहावाद्ययानि' कहा गया है।⁴ किसी वस्तु पर आघात द्वारा उस वस्तु के कम्पित होने पर ध्वनि की उत्पत्ति होती है। आघात से उत्पन्न ध्वनि आहत नाद कहलाती है। नाद के दो भेदों- अनाहत व आहत में- आहत नाद वह है जिसे हम सुन सकते हैं और उसका उपयोग कर सकते हैं। यही नाद संगीतोपयोगी होता है। यह संगीतोपयोगी नाद पांच संगीतात्मक ध्वनियों के रूप में प्रस्फुटित होता है। किसी छठी ध्वनि के रूप में नहीं। ये पांच ध्वनियां चार विभिन्न प्रकार के वाद्यों से उत्पन्न ध्वनि एक मानव कण्ठ से उद्भूत ध्वनि के रूप में विद्यमान है। और ये वाद्य नखज, वायुज, लोहज तथा शरीरज कहलाते हैं। "आचार्य कोहल ने सांगीतिक

³ संगीत बोध, श्रीधर परांजपेय, पृष्ठ-133,134

⁴ नारदीय शिक्षा-एकम् ईश्वरनिमित्तं नैसर्गिकम् अन्यपंचतुविधं मनुष्य-निर्मितं चेति पंचप्रकारा महावाद्यानम्। (द्र. संगीत चूडामणि, बड़ौदा संस्करण, प्रष्ठ - 69)

² दृष्टव्य, नाट्य शास्त्र (भाग-4) तचुस्त्रिशोऽध्याय श्लोक 4,5,6,7,8,9, प्रष्ठ-405

वाद्यों के पांच प्रकार ही माने हैं।⁵ अर्थात् नैसर्गिक कण्ठ ध्वनि को भी वाद्य ध्वनि में ही सम्मिलित किया है। “महर्षि भरत तथा दत्तिल जैसे विद्वान शरीरज ध्वनि को वाद्य ध्वनि से सम्मिलित न कर इनकी संख्या चार ही मानते हैं जो तत, सुशिर, घन, एवं अवनद्ध वाद्यों से उत्पन्न होती है।”⁶

नारद जी ने इनकी संख्या तीन मानी है- आनद्ध, तत एवं घन।⁷ उन्होंने सुशिर एवं कण्ठ ध्वनि का कहीं उल्लेख नहीं किया। महर्षि भरत के द्वारा प्रतिपादित वाद्यों के चतुर्विध वर्गीकरणको ही परवर्ती आचार्यों ने सर्व सम्मति से स्वीकार किया है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में इन चार प्रकार के वाद्यों के लिए सम्मिलित शब्द ‘आतोद्य’ दिया है।⁸ इन चार प्रकार के वाद्यों के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि-

ततं तंत्रीकृतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौशकरम्।

घनं तालस्तु विज्ञेयः सुशिरा वंशः उच्यते॥

ना. शा. (भाग-4) अ. 28, पृ.-2

अर्थात् तत तन्त्री वाद्य, अवनद्ध पुष्कर वाद्य, घन ताल वाद्य तथा सुशिर वंशी वाद्य है। ‘संगीत सारामृतम्’ में भी इन चार वाद्यों का यही लक्षण बताया गया है-

वाद्य तन्त्रतिं वाद्यं सुशिर सुशिरात्मकम्।

चर्मवनद्ध बदनमववद्धमीतिकितम्॥

घनो मूर्तिः साऽमिद्यातादायेत् यत्र तद्धनम्।

इत्येशां लक्षणः प्रोक्त मुनिभिर्भरतादिभिः॥

संगीत सारामृतम् वाद्य प्रकरणम् (99) पृ-112

इस प्रकार-

⁵ पञ्चधा च चतुर्था च त्रिविध च मते मते। कोहलस्य मते ख्यालं पञ्चधा वाद्यमेव च॥

सुशिर, घन चैव चर्मवद्ध तथैव च। तन्त्री गानम् पुरा ख्यातं पञ्चधा वाद्यलक्षणम्॥

(द्र. संगीत चूडामणि बड़ौदा संस्करण, पृ-69)

⁶ दत्तिलेन तु आनद्धं ततं घन सुशिर चेति चतुर्विधं वाद्यं कीर्तितम् (द्र. संगीत चूडामणि प्रष्ठ- 69)

⁷ नारदेमते चर्मणं तान्त्रिकं घनं चेति त्रिधा वाद्यलक्षणम्।

(द्र. संगीत चूडामणि, प्रष्ठ-69)

⁸ ततं चैवानद्धं च घनं सुशिरमेव च चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्॥1॥

नाट्य शास्त्र (भाग-4) अ. -28, पृष्ठ-1

- 1) **तत वाद्य-** ये वे वाद्य हैं जिनमें स्वरों की उत्पत्ति तारों के आन्दोलन या कम्पन से होती है। जैसे- सितार, वीणा, सरोद आदि।
- 2) **सुशिर वाद्य-** जिनमें वायु द्वारा स्वरोत्पत्ति होती है। वे सुशिर वाद्यों की श्रेणी में आते हैं जैसे- शहनाई, वंशी, शंख आदि।
- 3) **अवनद्ध वाद्य-** ये वे वाद्य हैं जिनका मुख चर्माच्छादित होता है और हाथ या अन्या किसी वस्तु के आघात से बजाये जाते हैं। इन्हें आनद्ध भी कहा गया है तबला, ढोलक, खोल आदि वाद्य अवनद्ध वाद्य हैं।
- 4) **घन वाद्य-** ये वाद्य लकड़ी या धातु निर्मित होते हैं और आघात करके बजाये जाते हैं। यह आघात या तो दो हिस्सों को परस्पर टकराकर या किसी वस्तु द्वारा किया जाता है। जैसे- मंजीरा, करताल, घण्टा आदि।

उपरोक्त चारो प्रकार के वाद्यों में ध्वनि उत्पन्न करने वाले कुछ भौतिक द्रव्य होते हैं जिनके कम्पन से ध्वनि उत्पन्न होती है। तन्त्री वाद्यों में ध्वनि उत्पन्न करने वाला द्रव्य तार है। अवनद्ध वाद्यों में उनके मुख पर मढ़ा गया ‘चर्म’, सुशिर वाद्यों में वायु दबाव तथा घन वाद्यों में टकराहट। अभिनव गुप्त ने ‘नाट्य शास्त्र की टीका में तत, अवनद्ध एवं घन वाद्यों की व्याख्या करते हुए बतलाया है। तन्त्रियों के कारण अवनद्ध एवं ताल वाद्य की सुस्पष्टता एवं सुन्दरता को चिरस्थायी बनाने के लिए घन वाद्य विशेष की संरचना हुई।”⁹

निष्कर्ष रूप में भरत मुनि द्वारा किया गया वाद्यों का चतुर्विध वर्गीकरण ही सर्वाधिक मान्य, लोकप्रिय, वैज्ञानिक एवं उचित है। कण्ठ ध्वनि को वाद्यों में सम्मिलित न कर पृथक् मानना ही ठीक है। क्योंकि यह ध्वनि मानव रचित न होकर ईश्वर प्रदत्त है। साथ ही वाद्यों से उत्पन्न होने वाली ध्वनि से सर्वथा भिन्न है। इस संदर्भ में ‘भारतीय संगीत शास्त्र में उपलब्ध वाद्य वर्गीकरणों में भरत मुनि प्रदत्त वर्गीकरण ही सर्वाधिक प्राचीन, सर्वश्रेष्ठ एवं वैज्ञानिकता से परिपूर्ण है जिसका बहुत अल्प रूपांतर के साथ अब तक प्रयोग होता आ रहा है।’

⁹ तन्त्रीणां (कृत तत) चर्मबन्धत्वादवनद्धम्, मूर्किठिन्येन घनं तदनुसारेण रस भावोपयोगी विशिष्टवर्णाद्धोरण च नोपयज्जत इति साम्यमात्रोपयोगी- इत्युक्तम्॥

ना. शा (भाग-4) पर अभिनव गुप्त प्रणीत अभिनव-भारती टीका, पृ-2

वाद्यों का यह चतुर्विध वर्गीकरण उनके स्वरूप को भली-भांति समझने के लिए किया गया है। इसका आधार है विभिन्न वाद्यों में ध्वन्योत्पादन की व्यवस्था। वर्गीकरण के द्वारा वाद्यों की बनावट, वादन-क्रिया उपयोगिता तथा महता को स्पष्ट किया गया है।

प्राचीन काल से लेकर आज तक वाद्यों के इस वर्गीकरण में एक परिवर्तन अवश्य द्रष्टिगोचर होता है। वह है 'अवनद्ध' के स्थान पर वित शब्द का प्रयोग महर्षि भरत तथा शारंगदेव आदि किसी भी शास्त्रकार ने प्राचीन ग्रन्थों में कहीं भी नहीं किया है। उनके उपरान्त इस शब्द का प्रचलन हुआ। तानसेन की रचनाओं में तत्, वितत्, घन, सुशिर नाम से वाद्यों का वर्गीकरण अवश्य प्राप्त होता है-

तत् का पहले कहत है वितत् दूसरो जान।

तीजो घन चैथे सिखर तानसेन परमान।।

तार लगे सब साज के सो तत ही तुममान।

चर्ममद्यों जाको मुखर वित सु कहे वखान।।

इसके अतिरिक्त तानसेन ने पूर्व 'संगीत चूड़ामणि' नामक ग्रन्थ में भी अवनद्ध वाद्यों के लिए वितत् शब्द का स्पष्ट उल्लेख मिलता है-

“ततं च विततम् चैव घनं सुशिर च।

गंन चैव पन्जैतत् पन्जशब्दाः प्रकीर्तितः॥ 1 ॥

ततं च तन्त्रितं विद्यात् विततम् मुखादनम्।

घनं च कांस्यतालादि तु सुशिरम् वायुपूरितम्।”¹⁰

अर्थात् तत्, सुशिर, वितत, घन और गान ये पांच प्रकार के शब्द हैं। तन्त्री वाद्यों को तत् तथा जिन वाद्यों का मुख मढ़ा हो उन्हें वित समझना चाहिये। कांस्य ताल आदि घन ताल है। वायु भर कर बजाने वाले वाद्यों को सुशिर कहते हैं।

संस्कृत में वितत् शब्द का अर्थ है-फैला हुआ। अवनद्ध वाद्यों के मुख पर मढ़ा जाने वाला चर्म कमल पत्र की भांति फैला हुआ होता है। इसी आधार पर संगीत विद्वानों द्वारा अवनद्ध के लिये 'वितत्' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। इसके अतिरिक्त 'वितत्' शब्द का अर्थ ढका हुआ भी लगाया जाता है।

अस्तु यह प्रतीत होता है कि चर्म से ढके होने के कारण ही अवनद्ध वाद्यों को वितत् की संज्ञा प्रदान की गई है।

लोक में भी अवनद्ध के स्थान पर 'वितत्' संज्ञा का प्रचलन था जिसे संगीतज्ञों एवं साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में स्थान दिया है।

मध्य युग से आधुनिक युग तक आते-आते वाद्यों के वर्गीकरण में तत्, वितत्, अवनद्ध, घन, सुशिर इन पांच शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा लेकिन वास्तविक चार प्रकार का ही है। तत् एवं वितत् में शाब्दिक समानता के कारण तत् वाद्यों का ही एक प्रकार वित वाद्य माना जाने लगा। इस भेद को वादन क्रिया के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया अर्थात् तत् वाद्य वे तन्त्री वाद्य हैं जो मिजराब आदि से बजाये जाते हैं। जैसे-सितार, सरोद और वितत् वे वाद्य हैं जिनका वादन गज व कमानी के घर्षण से किया जाता है। जैसे- वायलिन, सारंगी आदि। यद्यपि यह धारणा भ्रमपूर्ण है तथापि इस भ्रमक धारणा का प्रचलन आज भी देखने को मिलता है। वितत् को तत् का एक भाग मानना सर्वथा अनुपयुक्त है क्योंकि जहां भी वित् शब्द का प्रयोग किया गया है वह अवनद्ध वर्ग के वाद्यों के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। वाद्यों का चतुर्विध वर्गीकरण ही प्राचीन व प्रामाणिक है। इसकी प्रामाणिकता का आधार है 'नाट्य शास्त्र'।

भारतीय संगीत में ताल वाद्य-

‘ताल राग का मूल है, वाद्य ताल का अंग।

दोनों संयोग जब होत है, उठत एक तरंग॥”

संगीत के तीनों अंगों गायन, वादन, नृत्य में ताल का समान महत्त्व है। यह संगीत को नियन्त्रित करता है और नियन्त्रित सांगीतिक व्यवस्था में ही आकर्षण है; बिखराव में नहीं। अनिबद्ध संगीत के श्रवण से हृदय में उदासीनता छा जाती है। निसन्देह ताल के अभाव में संगीत का अस्तित्व ही असम्भव है। संगीत में ताल की अत्याधिक उपयोगिता एवं महत्ता के कारण ही संगीत के क्षेत्र में विविध ताल वाद्यों द्वारा ही सम्भव है एवं उसी में सौन्दर्य भी निहित है। संगीत में ताल को वाद्य का आश्रय प्राप्त हो जाने पर मन को आह्लादित करने वाली जो तरंगें उठती हैं, वह संगीत के सौन्दर्य को द्विगुणित कर उसको जीवंतता प्रदान करती है।

¹⁰ दृष्टव्य संगीत चूड़ामणि, पृ.- 69

ताल वाद्यों की आवश्यकता एवं उत्पत्ति

यह सर्वविदित सत्य है कि ताल के सुन्दर और सुचारु रूप से प्रस्तुतीकरण हेतु महत्वपूर्ण साधन ताल वाद्य है। संगीत क्षेत्र में ताल-वाद्य के प्रयोग की आवश्यकता निम्न कारणों से प्रतीत हुई- सर्वप्रथम ताल के बोलों के प्रदर्शन हेतु ताल वाद्यों की आवश्यकता अनुभव हुई। वैसे तो हाथ पर ताली देकर भी ताल को दर्शाया जा सकता है। परन्तु ताल- प्रदर्शन के इस माध्यम से केवल मात्राओं की गणना ही की जा सकती है। जब ताल में मात्राओं के ऊपर बोलों की स्थापना करके उसे किसी ताल वाद्य पर प्रदर्शित किया जाता है तभी उस का सही रूप निखर कर सामने आता है। गायन, वादन, नृत्य के साथ ताल की संगत वाद्यों के माध्यम से ही की जा सकती है। प्राचीन काल में हाथ से ताल लगाया करते थे। ज्यों-ज्यों वाद्यों का विकास हुआ त्यों-त्यों ताल नापने के साधन तैयार हो गए।

द्वितीय- ताल वाद्यों का प्रयोग संगीत की तीन विधाओं में लगने वाले समय की गति को नापने तथा संगीत को व्यवस्थित रूप प्रदान करने हेतु किया जाता है। उदाहरणार्थ- जिस प्रकार टिक-टिक करती हुई घड़ी समय की चाल को प्रदर्शित करती रहती है, उसी प्रकार ताल देने वाला ताल वाद्यों के माध्यम से गायन, वादन और नृत्य की चाल को नापता तथा दर्शाता रहता है।

तृतीय- संगीत को सुन्दर, कर्ण-प्रिय एवं प्रभाव पूर्ण बनाने हेतु ताल वाद्यों का प्रयोग आवश्यक है। जैसे कोई व्यक्ति गीत गा रहा है अथवा सितार आदि किसी स्वर वाद्य पर कोई राग या धुन प्रस्तुत कर रहा है तथा संगति करने वाला उसके साथ बैठा हाथ पर ताली लगाकर एक, दो, तीन, चार करके मात्राओं की गणना कर रहा है तो फिर ऐसा करके गायन, वादन की चाल का हिसाब तो रखा जा सकता है, किन्तु ऐसी संगति श्रोताओं के हृदय को प्रभावित एवं आनन्दित करनेमें सर्वथा असमर्थ रहती है। मानव मन बहुत चंचल और भावुक होता है। यदि गीत अथवा धुन के साथ संगतकार किसी ताल वाद्य पर ताल के बोलों को बजाकर संगति करेगा और सुन्दर सा मुखड़ा लगाकर सम पकड़ेगा तो संगीत का जो प्रभावोत्पादक रूप होगा वह संगीत प्रेमियों के लिए अनभिज्ञता का विषय नहीं है। उदाहरण स्वरूप- “सुमित्रा आनन्द पाल सिंह ने अपने लेख ‘संगीत-चर्चा’ में इसके सन्दर्भ में लिखा है-“गायक को सहारा देने और उसके गीत का साथ करने, उसके मन को और अधिक लगाने, उसके दोशों को ढकने, गायन-क्रिया काल को काल वृत्त में नापते रहने के कारण वाद्यों का अविष्कार हुआ।”¹¹

चतुर्थ- संगीत को आकर्षक एवं मधुर बनाने हेतु ताल-वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। संगीत के क्षेत्र में चाहे गायन हो, वादन हो अथवा नृत्य सभी का आनन्द ताल की संगति में ही निहित है। हमारे भारतीय संगीत में ताल की प्रस्तुति हेतु नानाविध ताल-वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। ताल के विस्तृत स्वरूप के कारण ताल वाद्यों का अत्याधिक प्रयोग भी स्वाभाविक तथा अनिवार्य है। जब मानव हृदय से निःसृत उद्गार स्वरों की सरिता में स्नात हो कर प्रवाहित होने लगे, तो ताल को वाद्य पर प्रदर्शित कर उस ताल रूपी तट से स्वर-सरिता को बान्ध दिया गया। यही कारण है कि भारतीय संगीत आत्मानुभूति कराने में समर्थ है। व्यक्ति के हृदय को स्पर्श कर उसे आह्लादित करने की जितनी सामर्थ्य भारतीय संगीत में है। उतनी किसी अन्य संगीत में नहीं। विदेशी संगीत में ताल-वाद्यों का उपयोग केवल मात्राओं की गणना तक सीमित है, वहां ताल-वाद्यों का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं। वहां जो ताल वाद्य प्रचलित है वे ड्रम कहलाते हैं। ये ड्रम छोट-बड़े आकार के होते हैं। यह आकार भेद स्वरों के ऊंचे-नीचेपन के कारण होता है, लेकिन भारतीय संगीत में ताल वाद्यों का महत्त्व इसके विपरीत है। तबला, पखावज नाल इत्यादि वाद्यों में लय और ताल के साथ को भी अत्याधिक महत्ता प्रदान की है।

हम प्रत्येक ताल वाद्य को किसी स्वर में मिलाकर ही अपना संगीत कार्य प्रदर्शित करते हैं। जिससे उसके सौन्दर्य आनन्द एवं आकर्षण में वृद्धि होती है जैसे तबला वादक किसी गायक के साथ जब तबला बजाता है तो उसके स्वर से अपना तबला मिलाता है। इस प्रकार गायक एवं तबला वाद्य का स्वर मिल जाने से संगीत में माधुर्य तथा आनन्द की अनुभूति होती है। पाश्चात्य संगीत में प्रयुक्त साईड-ड्रम आदि में इस प्रकार से एक दूसरे से स्वर नहीं मिलाया जाता, बिना मिलाए ही बजा दिया जाता है। किन्तु हमारे यहां पाश्चात्य वाद्य-यंत्रों को बजाने वाले जो भारतीय कलाकार हैं उनका सदा यह प्रयास रहता है कि इन वाद्य यंत्रों को जिसके साथ भी बजाया जाये उसी के अनुसार स्वर में बांध लिया जाये ताकि संगीत कार्य आकर्षक एवं मधुर बना रहे।

तत्, सुशिर, घन व अवनद्ध ये चारों प्रकार के वाद्य नाद को ही व्यक्त करते हैं पर फिर भी भारतीय वर्गीकरण के तत् और सुशिर वर्ग में आने वाले वाद्य स्वर वाद्य हैं और घन व अवनद्ध वर्ग में आने वाले वाद्य हैं। इसका मुख्य कारण है वाद्यों से उद्भूत नाद की जाति में अन्तर। स्वर वाद्यों में नाद या अन्य किसी प्रकार की रचनाएं प्रस्तुत की जाती हैं। ताल वाद्यों में लय तथा ताल के बोल बजाये जाते हैं। इस प्रकार अवनद्ध व घन वाद्यों द्वारा ताल की निष्पत्ति ही सम्भव

¹¹ 'संगीत' मार्च, 1965, पृ.-22

होती है। स्वर की अभिव्यक्ति नहीं। डॉ. योगमाया शुक्ल के अनुसार- “इन वर्गों के वाद्य में प्रायः गति प्रयोग व काल विभाजन द्वारा ‘ताल’ की अभिव्यक्ति ही सम्भव होती है। अतः अवनद्ध और घन वाद्य स्वभावतः ताल प्रदान है।” ताल वाद्यों को किसी एक स्वर में मिला लेने के बाद वादक की इच्छानुसार स्वर में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। घन वाद्य को स्वर में मिलाया नहीं जा सकता वह तो निर्माण के समय ही किसी विशेष स्वर में मिला होता है।

उक्त चारों प्रकार के वाद्यों में किस वर्ग के वाद्यों की उत्पत्ति सर्वप्रथम हुई? इसका स्पष्ट उल्लेख संगीत साहित्य में प्राप्त नहीं होता, परन्तु सूक्ष्मता से विचार करने पर ज्ञात होता है कि आदि मानव के मुख से निकली ध्वनि से गायन, उछलना-कूदना आदि क्रियाओं से नृत्य की उत्पत्ति हुई जिसकी पूर्ति हेतु दो वस्तुओं को टकराकर, पेड़ की दो डंडियों को टकराकर थाली, लोटा आदि बर्तन बजाकर, सूखी हुई फली को हिलाते हुए बजाकर, दोनों हाथों से ताली बजाकर लय प्रदर्शन व काल मापन का कार्य किया। ये घन वाद्यों का प्रथम अविकसित रूप था धीरे-धीरे आवश्यकता अनुसार नाना विध वाद्यों कर अविष्कार होता गया। तत्पश्चात् सभ्यता के विकास के साथ स्वर संगीत के साथ स्वर देने हेतु तत् सुशिर आदि वाद्यों का अविष्कार किया गया। इस सन्दर्भ में डॉ. राधेश्याम मजी का विचार है-“मानव सभ्यता की शैशवावस्था में खुशियों या उत्सवों के अवसर पर अपने हृदय की उमड़ती भावनाओं को गायन तथा नृत्य के माध्यम से प्रकट करता था उस युग में नृत्य की तालात्मक संगति नृत्यकारों द्वारा स्वयं ही सम्पादित की जाती थी। वे काल का निर्धारण अपने पैरों को पटक कर या दोनों हथेलियों से ताली देकर करते थे। उसकी लयात्मक चेतना ने आंगिक चेष्टाओं एवं लय वाले वाद्यों का मानकीकरण भी किया। शनैः-शनैः लयात्मक वाद्यों में घुंघरू, घंटी, करताल आदि का प्रयोग होने लगा। इस प्रकार सांगीतिक वाद्यों में सर्वप्रथम घन वाद्यों का सृजन हुआ।”¹²

इस प्रकार गायन, वादन तथा नृत्य की संगत में तो ताल वाद्य अपना बहुमूल्य प्रदान करते ही हैं, साथ ही वादक अवनद्ध वाद्यों का स्वतन्त्र प्रदर्शन कर अपनी वादन कला का परिचय भी देते हैं। इसी कारण इनका भारतीय संगीत में अत्याधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भ

1. भरतमुनि नाट्य शास्त्र भाग 4 , 34/259, दृष्टव्य भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली-1983 संस्करण
2. कालिदास, साहित्य एवं वादन कला, डॉ. सुषमा कुल श्रेष्ठ, पृष्ठ संख्या-29
3. दृष्टव्य, नाट्य शास्त्र (भाग-4) तच्चुस्त्रिशाशोऽध्याय श्लोक 4,5,6,7,8,9, पृष्ठ-405
4. संगीत बोध, श्रीधर परांजपये, पृष्ठ-133,134
5. नारदीय शिक्षा-एकम ईश्वरनिमित्तं नैसर्गिकम् अन्यपंचतुविधं मनुष्य-निर्मितं चेति पंचप्रकारा महावाद्यानम्। (द्र. संगीत चूड़ामणि, बड़ौदा संस्करण, पृष्ठ-69)
6. पञ्चधा च चतुर्था च त्रिविधं च मते मते। कोहलस्य मते ख्यालं पञ्चधा वाद्यमेव च।। सुशिर, घन चैव चर्मवद्ध तथैव च। तन्त्री गानम् पुरा ख्यातं पञ्चधा वाद्यलक्षणम्।। (द्र. संगीत चूड़ामणि बड़ौदा संस्करण, पृष्ठ-69)
7. दतिलेन तु आनद्धं ततं घन सुशिर चेति चतुर्विधं वाद्यं कीर्तितम् (द्र. संगीत चूड़ामणि पृष्ठ-69)
8. नारदेमते चर्मणं तान्त्रिकं घनं चेति त्रिधा वाद्यलक्षणम्। (द्र. संगीत चूड़ामणि, पृष्ठ-69)
9. ततं चैवावनद्धं च घनं सुशिरमेव च चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।। 1 ।। नाट्य शास्त्र (भाग-4) अ. -28, पृष्ठ-1
10. तन्त्रीणां (कृत तत्) चर्मबन्धत्वादवनद्धम्, मूर्किठिन्येन घनं तदनुसारेण रस भावोपयोगी विशिष्टवर्णोद्घोरण च नोपयज्जत इति साम्यमात्रोपयोगी-इत्युक्तम्।। ना. शा. (भाग-4) पर अभिनव गुप्त प्रणीत अभिनव-भारती टीका, पृ-2
11. दृष्टव्य संगीत चूड़ामणि, पृ.-69
12. ‘संगीत’ मार्च, 1965, पृ.-22

¹² ‘भारतीय सुशिर वाद्यों का इतिहास’, डॉ. राधेश्याम जायसवाल, पृ-31

13. 'भारतीय सुशिर वाद्यों का इतिहास', डॉ. राधेष्ठ्याम
जायसवाल, पृ-31

Corresponding Author

Dr. Rajeev Sharma*

Assistant Teacher, Department of Music, Himachal
Pradesh University, Shimla